॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथर्ववेदीय

सीतोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

श्रीसीताजीके स्वरूपका तात्त्विक वर्णन

एक बार देवताओंने प्रजापति ब्रह्माजीसे पूछा कि 'श्रीसीताजी कौन हैं? उनका क्या स्वरूप है?' तब उन प्रजापतिने बतलाया कि ''वे शक्तिरूपा ही श्रीसीताजी हैं। मूल प्रकृतिस्वरूपा होनेके कारण वे सीताजी ही प्रकृति कहलाती हैं। वे श्रीसीताजी प्रणवकी प्रकृतिस्वरूपा होनेसे भी प्रकृति कही जाती हैं। 'सीता' यह उनका नामात्मक रूप तीन वर्णोंका है और वे साक्षात् योगमायास्वरूपा हैं। सम्पूर्ण जगत्-प्रपञ्चके भगवान् विष्णु बीज हैं और उनकी योगमाया 'ईकार' रूपा हैं। 'सकार' सत्य, अमृत, प्राप्ति* नामक ऐश्वर्य अथवा सिद्धि एवं चन्द्रका वाचक कहा गया है। दीर्घरूप-मात्रायुक्त 'तकार' महालक्ष्मीका स्वरूप, प्रकाशमय एवं विस्तारकारी (जगत् स्रष्टा) कहा गया है। वे 'ईकार' रूपिणी अव्यक्तरूपा महामाया अपने चन्द्रसन्निभ अमृतमय अवयवों एवं दिव्य अलंकार, माला, मुक्तामालादि आभूषणोंसे अलङ्कृत स्वरूपमें व्यक्त होती हैं। उनके तीन स्वरूप हैं, जिनमें अपने प्रथम स्वरूपसे वे शब्दब्रह्ममयी हैं। वे बुद्धिस्वरूपा स्वाध्यायकालमें प्रसन्न होनेपर बोधको प्रकट करती हैं। अपने दूसरे स्वरूपमें वे पृथ्वीपर महाराज सीरध्वज जनककी यज्ञभूमिमें हलाग्रसे उत्पन्न हुईं। अपने तीसरे स्वरूपमें वे 'ईकार' रूपिणी अव्यक्तस्वरूपा रहती हैं। इन्हीं तीनों रूपोंको सीता कहा जाता है। शौनकीय तन्त्रमें निम्नलिखित भावके श्लोक मिलते हैं—

''श्रीसीताजी श्रीरामकी नित्य सन्निधिके कारण जगदानन्दकारिणी हैं। समस्त शरीरधारियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली हैं। श्रीसीताजीको मूलप्रकृति कही जानेवाली षडैश्वर्यसम्पन्ना भगवती जानना चाहिये। प्रणवस्वरूपा होनेके कारण ब्रह्मवादी उन्हें प्रकृति बतलाते हैं। ब्रह्मसूत्रके '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**' इस सूत्रमें उन्हींका प्रतिपादन है। वे श्रीसीताजी सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सबकी आधारभूता, कार्य एवं कारणरूपा, चेतन एवं जड दोनोंकी स्वरूपभूता, ब्रह्माजीसे लेकर जड पदार्थोंतककी आत्मभूता, इन सबके गुण एवं कर्मके भेदसे सबकी शरीररूपा; देवता, ऋषि, मनुष्य एवं गन्धर्वोंकी स्वरूपभूता; असुर, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच प्रभृति प्राणियोंकी शरीररूपा; पञ्चमहाभूत, दस इन्द्रियाँ, मन एवं प्राणरूपा अर्थात् समस्त विश्वरूपा महालक्ष्मी देवताओंके भी स्वामी भगवान्‌से भिन्न एवं अभिन्नस्वरूपा जानी जाती हैं।

''वे श्रीसीताजी शक्त्यासना—शक्तिस्वरूपा होकर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एवं साक्षात् शक्ति—इन तीन रूपोंमें प्रकट होती हैं। इच्छाशक्तिमय उनका स्वरूप भी त्रिविध होता है—श्रीदेवी, भूमिदेवी एवं नीलादेवीके रूपमें कल्याणरूपा, प्रभावरूपा तथा चन्द्र, सूर्य एवं अग्निरूपा वे होती हैं। चन्द्रस्वरूपमें वे ओषधियोंका पोषण करती हैं। कल्पवृक्ष, पुष्प, फल, लता एवं गुल्मों (झाड़ियों),

* अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्यमें 'प्राप्ति' नामक सिद्धिका भी वर्णन आता है। प्राप्ति कहते हैं सर्वत्र गमनकी शक्तिको।

ओषधियों एवं दिव्य ओषधियोंकी स्वरूपभूता होती हैं तथा उसी चन्द्रके अमृतस्वरूपमें देवताओंके लिये 'महस्तोम' नामक यज्ञके फलको देनेवाली होती हैं। अमृतके द्वारा देवताओंको, अन्नके द्वारा पशुओं (प्राणियों)-को तथा तृणके द्वारा उसपर अवलम्बित रहनेवाले जीवोंको —इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंको वे तृप्त करती हैं।''

''वे सूर्यादि समस्त भुवनोंको—लोकोंको प्रकाशित करनेवाली हैं। दिन, रात्रि, निमेषसे लेकर घड़ी प्रभृति कालकी कलाएँ, आठ पहरोंसे युक्त दिन-रात्रिके भेदसे पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा संवत्सरके भेदसे मनुष्योंकी सौ वर्षकी आयुकी कल्पनाके द्वारा वे स्वयं ही प्रकाशित होती हैं। विलम्ब तथा शीघ्रतासे उपलक्षित निमेषसे लेकर परार्धपर्यन्त कालचक्र तथा जगच्चक्रादि प्रकारसे चक्रके समान घूमनेवाले कालके सभी विशेष-विशेष विभाग उन्हींके स्वरूप हैं, जो प्रकाशरूपा एवं कालरूपा हैं।

''वे अग्निरूपा होकर प्राणियोंके लिये अन्न एवं जलादिपानके लिये क्षुधा एवं पिपासारूपसे, देवताओंके लिये मुखरूपसे (देवता अग्निमें होमे हुए पदार्थ ही पाते हैं), वनौषधियोंके लिये शीतोष्णरूपसे तथा काष्ठोंके बाहर एवं भीतर नित्य एवं अनित्य दोनों प्रकारसे (नित्यरूपमें व्यापक अग्नितत्त्व एवं अनित्यरूपमें प्रज्वलिताग्नि प्रभृति रूपोंमें) स्थित हैं।

''वे श्रीसीताजी अपने श्रीदेवीरूपमें तीन प्रकारका रूप धारण करके श्रीभगवान्‌के संकल्पानुसार सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये व्यक्त होती हैं। वे लोकरक्षणार्थ श्री तथा लक्ष्मीरूपमें लक्षित होती हैं, यों जाना जाता है। भूदेवी सम्पूर्ण जलमय समुद्रोंसहित सातों द्वीपवाली पृथिवीके रूपमें भूः-भुवः आदि चौदहों भुवनोंकी आधार एवं आधेयभूता प्रणवस्वरूपा होकर व्यक्त होती हैं। विद्युन्मालाके समान मुखवाली नीलादेवी भी सम्पूर्ण ओषधियों एवं समस्त प्राणियोंके पोषणके लिये सर्वरूपा हो जाती हैं। समस्त भुवनोंके अधोभागमें जलाकारस्वरूप, मण्डूकमयी तथा भुवनोंकी आधाररूपा वही आदिशक्ति जानी जाती हैं।''

''उन श्रीसीताजीका क्रियाशक्तिरूप श्रीहरिके मुखसे नादके रूपमें व्यक्त हुआ। उस नादसे बिन्दु प्रकट हुआ। बिन्दुसे ॐकारका आविर्भाव हुआ। ॐकारसे परे राम-वैखानस नामका पर्वत है। उस पर्वतकी कर्म एवं ज्ञानात्मिका अनेक शाखाएँ व्यक्त हैं। उसी पर्वतपर वेदत्रयीस्वरूप सर्वार्थको प्रकट करनेवाला आदि-शास्त्र है। तात्पर्य यह कि श्रीराम-वैखानस पर्वत ही नित्य वेदस्वरूप है और लोकमें वह वेदोंके रूपमें व्यक्त होता है। उस आदि-शास्त्रको ऋक्, यजुः एवं सामात्मक होनेसे त्रयी कहा जाता है। कार्य-सिद्धिके लिये चार नामोंसे उसका वर्णन होता है अर्थात् देवस्वरूप वर्णनके मन्त्र, यज्ञ-विधि-निर्देशक मन्त्र तथा यज्ञमें गानके मन्त्र—ये ही तीन प्रकारके मन्त्र होनेसे वेदोंको त्रयी कहते हैं; किंतु यज्ञमें ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु एवं उद्गाताके कार्यकी दृष्टिसे वेदोंको चार नामोंसे सम्बोधित किया जाता है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वाङ्गिरसवेद। यज्ञकर्ममें चातुर्होत्र प्रधान है और उसमें देवस्वरूपादि तीनका ही उपयोग होनेसे वेदोंको त्रयी कहते हैं। अथर्वाङ्गिरसवेद साम, ऋक् एवं यजुःस्वरूप ही है। आभिचारिक कर्मोंकी समानतासे इन चारोंका पृथक्-पृथक् निर्देश होता है।''

''ऋग्वेदकी इक्कीस शाखाएँ कही गयी हैं। यजुर्वेदीयोंकी एक सौ नौ शाखाएँ हैं। सामवेदकी एक सहस्र शाखाएँ हैं और अथर्ववेदकी पाँच शाखाएँ। इन वेदोंमें प्रथम (सर्वश्रेष्ठ) वैखानस मत है, जो प्रत्यक्ष दर्शन है। इसलिये मुनियोंद्वारा नित्य परम वैखानस (श्रीरामरूप)-का स्मरण किया जाता है। कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्यौतिष तथा छन्द—ये छः वेदाङ्ग हैं। अयन, मीमांसा और न्यायशास्त्रका विस्तार—ये वेदोंके उपाङ्ग हैं। धर्मज्ञ पुरुषोंके सेवनके लिये चारों वेद तथा वेदोंसे अधिक ये अङ्ग-उपाङ्गादि हैं। सभी वैदिक शाखाओंमें उनके समयाचार (साम्प्रदायिक आचरण)-की शास्त्रके साथ संगति लगानेके लिये निबन्ध हैं। धर्मशास्त्रों (स्मृतियों)-को महर्षियोंने अपने अन्तःकरणके दिव्य ज्ञानसे पूर्ण किया है। मुनियोंने इतिहास-पुराण, वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा आयुर्वेद—ये पाँच उपवेद बताये हैं। इन सबके साथ दण्ड, नीति और व्यापार-विद्या तथा परतत्त्वमें प्राणजय करके स्थिति—इस प्रकार इक्कीस भेदयुक्त यह स्वतःप्रकाश—स्वयं प्रकटित शास्त्र है।''

''पूर्वकालमें वैखानस ऋषिके हृदयमें भगवान् विष्णुकी वाणी प्रकट हुई। उसी वाणीको वेदत्रयीके रूपमें इस प्रकार कल्पित करके देहधारी अपनी उन्नति

करता है। वैखानस ऋषिने अपने हृदयमें प्रकट उस भगवद्वाणीको संख्यारूपमें संकल्प करके पहले जिस प्रकार प्रकट किया, उसी प्रकार वह सब मैं बतलाता हूँ; सुनो। जो सनातन ब्रह्ममय रूपधारिणी क्रियाशक्ति कही गयी है, वह भगवान्‌की साक्षात् शक्ति है। भगवान्‌के स्मरणमात्र (संकल्पमात्र)-से वे जगत्‌के रूपोंको प्रकट करती तथा दृश्य-जगत्‌में स्वयं व्यक्त होती हैं। वे शासन एवं कृपास्वरूपा, शान्ति तथा तेजोरूपा, व्यक्त (प्राणियों)-की, अव्यक्त (देवादि)-की कारणभूता एवं उनके चरणादि समस्त अवयव तथा मुख एवं वर्ण (रूपादि)-भेदस्वरूपा, भगवान्‌के साथ चलनेवाली (उनके संकल्पसे ही गति करनेवाली), भगवान्‌से कभी विलग न होनेवाली एवं अविनाशिनी, निरन्तर भगवान्‌के साथका ही आश्रय करनेवाली, कहे हुए और न कहे हुए सभी स्वरूपोंवाली, निमेष-उन्मेषसे लेकर सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, अनुग्रह आदि समस्त सामर्थ्योंसे युक्त होनेके कारण साक्षात् शक्तिरूपमें वर्णित होती हैं।''

''श्रीसीताजीका इच्छाशक्ति रूप भी तीन प्रकारका है। प्रलयके समय विश्रामके लिये भगवान्‌के दाहिने वक्ष:स्थलपर श्रीवत्सकी आकृति धारण करके जो विश्राम करती हैं, वे योगशक्ति हैं। भोगशक्ति भोगरूपा हैं। वे कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि तथा शङ्ख, पद्म (तथा मकर, कच्छप) आदि नौ निधियोंमें निवास करती हैं और भगवद्भक्तोंकी कामनाके अनुसार अथवा उनकी कामनाके बिना भी नित्य-नैमित्तिक कर्मके द्वारा, अग्निहोत्रादिसे अथवा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधिसे—किसी भी निमित्तसे भगवान्‌की उपासना करनेवालोंके उपभोगके लिये बड़े-बड़े भोगोंसे, विशाल द्वार एवं प्राकारवाले भवनोंसे, विमानोंसे अथवा भगवद्विग्रहके अर्चन-पूजनादिकी सामग्रियोंसे अर्चनरूपमें, स्नानादि (तीर्थस्नानादि)-रूपमें, पितृपूजा आदिके रूपमें, अन्न (भोज्य पदार्थ) एवं पीने योग्य रस आदिसे, यह भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये है—यों कहकर वे सब उपभोग-सामग्रियोंका सम्पादन करती हैं।

''श्रीसीताजीकी वीरशक्ति चतुर्भुजा हैं। उनके हाथोंमें अभय एवं वरदानकी मुद्राएँ तथा दो कमल हैं। किरीट एवं आभूषणोंसे वे भूषिता हैं। सम्पूर्ण देवताओंसे घिरी हुई, कल्पवृक्षके मूलमें चार श्वेत हाथियोंद्वारा रत्नजटित कलशोंके अमृत-जलसे अभिषिक्त होती हुई वे आसीन हैं। ब्रह्मादि समस्त देवता उनकी वन्दना करते हैं। अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यसे वे युक्त हैं और उनके सम्मुख खड़ी होकर कामधेनु उनकी स्तुति करती हैं। वेद और शास्त्र आदि भी मूर्तिमान् होकर उनकी स्तुति करते हैं। जया आदि अप्सराएँ एवं देवनारियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। सूर्य एवं चन्द्र दीपक बनकर वहाँ प्रकाश कर रहे हैं। तुम्बुरु एवं देवर्षि नारद आदि उनका गुणगान कर रहे हैं। राका और सिनीवाली नामकी देवियाँ उनपर छत्र लगाये हैं। ह्लादिनी एवं माया उनके दोनों ओर चँवर डुला रहीं हैं। स्वाहा एवं स्वधा उनपर पंखे झलती हैं। भृगु और पुण्य आदि महात्मा उनकी पूजा कर रहे हैं। दिव्य सिंहासनपर अष्टदलपद्मके ऊपर आसीन वे महादेवी समस्त कारणों एवं कार्योंको निर्मित करनेवाली हैं। इस प्रकार भगवती लक्ष्मीके भगवान्‌से पृथक् निवासका ध्यान करना चाहिये। उन्होंने अपनेको अनुरूप दिव्य आभूषणोंसे अलङ्कृत किया है। वे स्थिर होकर प्रसन्न नेत्रोंसे समस्त देवताओंद्वारा पूजित वीरलक्ष्मी कही जाती हैं।''

॥ अथर्ववेदीय सीतोपनिषद् समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

~~~ o ~~~
~~~